1957G Exceptions to code of conduct

*Atichar Rahasy*a (also in Anekant, 1957)

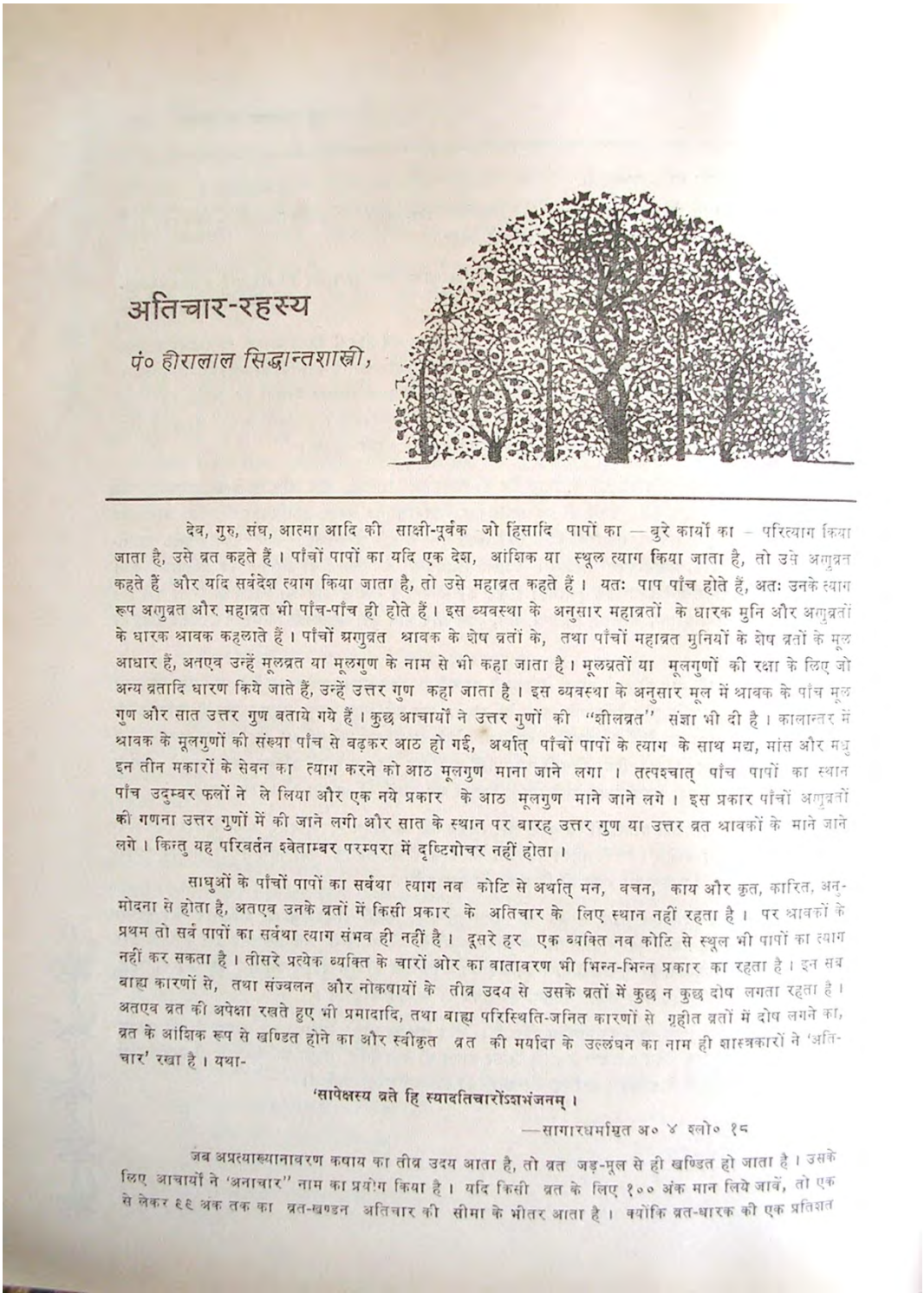

अतिचार-रहस्य

पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री,

देव, गुरु, संघ, आत्मा आदि की साक्षी-पूर्वक जो हिंसादि पापों का — बुरे कार्यों का — परित्याग किया जाता है, उसे व्रत कहते हैं। पाँचों पापों का यदि एक देश, आंशिक या स्थूल त्याग किया जाता है, तो उसे अणुव्रत कहते हैं और यदि सर्वदेश त्याग किया जाता है, तो उसे महाव्रत कहते हैं। यतः पाप पाँच होते हैं, अतः उनके त्याग रूप अणुव्रत और महाव्रत भी पाँच-पाँच ही होते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार महाव्रतों के धारक मुनि और अणुव्रतों के धारक श्रावक कहलाते हैं। पाँचों अणुव्रत श्रावक के शेष व्रतों के, तथा पाँचों महाव्रत मुनियों के शेष व्रतों के मूल आधार हैं, अतएव उन्हें मूलव्रत या मूलगुण के नाम से भी कहा जाता है। मूलव्रतों या मूलगुणों की रक्षा के लिए जो अन्य व्रतादि धारण किये जाते हैं, उन्हें उत्तर गुण कहा जाता है। इस व्यवस्था के अनुसार मूल में श्रावक के पाँच मूल गुण और सात उत्तर गुण बताये गये हैं। कुछ आचार्यों ने उत्तर गुणों की "शीलव्रत" संज्ञा भी दी है। कालान्तर में श्रावक के मूलगुणों की संख्या पाँच से बढ़कर आठ हो गई, अर्थात् पाँचों पापों के त्याग के साथ मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों के सेवन का त्याग करने को आठ मूलगुण माना जाने लगा। तत्पश्चात् पाँच पापों का स्थान पाँच उदुम्बर फलों ने ले लिया और एक नये प्रकार के आठ मूलगुण माने जाने लगे। इस प्रकार पाँचों अणुव्रतों की गणना उत्तर गुणों में की जाने लगी और सात के स्थान पर बारह उत्तर गुण या उत्तर व्रत श्रावकों के माने जाने लगे। किन्तु यह परिवर्तन श्वेताम्बर परम्परा में दृष्टिगोचर नहीं होता।

साधुओं के पाँचों पापों का सर्वथा त्याग नव कोटि से अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से होता है, अतएव उनके व्रतों में किसी प्रकार के अतिचार के लिए स्थान नहीं रहता है। पर श्रावकों के प्रथम तो सर्व पापों का सर्वथा त्याग संभव ही नहीं है। दूसरे हर एक व्यक्ति नव कोटि से स्थूल भी पापों का त्याग नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर का वातावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार का रहता है। इन सब बाह्य कारणों से, तथा संज्वलन और नोकषायों के तीव्र उदय से उसके व्रतों में कुछ न कुछ दोष लगता रहता है। अतएव व्रत की अपेक्षा रखते हुए भी प्रमादादि, तथा बाह्य परिस्थिति-जनित कारणों से गृहीत व्रतों में दोष लगने का, व्रत के आंशिक रूप से खण्डित होने का और स्वीकृत व्रत की मर्यादा के उल्लंघन का नाम ही शास्त्रकारों ने 'अतिचार' रखा है। यथा-

'सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभंजनम्।

—सागारधर्मामृत अ० ४ श्लो० १८

जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय का तीव्र उदय आता है, तो व्रत जड़-मूल से ही खण्डित हो जाता है। उसके लिए आचार्यों ने 'अनाचार" नाम का प्रयोग किया है। यदि किसी व्रत के लिए १०० अंक मान लिये जावें, तो एक से लेकर ९९ अंक तक का व्रत-खण्डन अतिचार की सीमा के भीतर आता है। क्योंकि व्रत-धारक की एक प्रतिशत

अपेक्षा व्रत-धारण में बनी हुई है। यदि वह एक प्रतिशत व्रत-सापेक्षता भी न रहे और व्रत शत-प्रतिशत खण्डित हो जावे, तो उसे अनाचार कहते हैं।। अनेक आचार्यों ने इसी दृष्टि को लक्ष्य में रख करके अतिचारों की व्याख्या की है। किन्तु कुछ आचार्यों ने अतिचार और अनाचार इन दो के स्थान पर अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मन के भीतर व्रत-सम्बन्धी शुद्धि की हानि को अतिक्रम, व्रत की रक्षा करने वाली शील-वाड़ के उल्लंघन को व्यतिक्रम, विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार और विषय-सेवन में अति आसक्ति को अनाचार कहा है। जैसा कि आ० अमितगति ने कहा है—

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यक्तिक्रमं शीलवृतैर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषुवर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम्॥

—सामायिक श्लोक

उस व्यवस्था के अनुसार १ से लेकर ३३ अंश तक के व्रत-भंग को अतिक्रम, ३४ से लेकर ६६ अंश तक के व्रत-भंग को व्यक्तिक्रम, ६७ से लेकर ९९ अंश तक के व्रत-भंग को अतिचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंग को अनाचार समझना चाहिए।

परन्तु प्रायश्चित्त-शास्त्रों के प्रणेताओं ने उक्त चार के साथ 'आभोग' को बढ़ा करके व्रत-भंग के पाँच विभाग किये हैं। उनके मत से एक बार व्रत खण्डित करके भी पुनः व्रत में वापिस आ जाने का नाम अनाचार है और व्रत खण्डित होने के बाद निःशङ्क होकर उत्कट अभिलाषा के साथ विषय-सेवन करने का नाम 'आभोग है। किसी-किसी प्रायश्चित्त-शास्त्रकार ने अनाचार के स्थान पर 'छिन्नभंग' नाम दिया है।

प्रायश्चित्त-शास्त्रकारों के मत से १ अंश से लेकर २५ अंश तक के व्रत-भंग को अतिक्रम, २६ से लेकर ५० अंश तक के व्रत-भंग को व्यतिक्रम, ५१ से लेकर ७५ अंश तक के व्रत-भंग को अतिचार, ७६ से लेकर ९९ अंश तक के व्रत-भंग को अनाचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंग को आभोग समझना चाहिए।

श्रावक के जो बारह व्रत बतलाये गये हैं उनमें से प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं। जैसा कि तत्वार्थाधिगमसूत्र अ० ७ के सू० २४ से सिद्ध है—

"व्रत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।"

ऐसी दशा में स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच ही अतिचार क्यों बतलाये गये हैं? तत्वार्थसूत्र की उपलब्ध समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर टीकाओं के भीतर इस प्रश्न का कोई उत्तर दृष्टि-गोचर नहीं होता। जिन-जिन श्रावकाचारों में अतिचारों का निरूपण किया है उनमें, तथा उनकी टीकाओं में भी इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं मिलता है। पर इस प्रश्न के समाधान का संकेत मिलता है प्रायश्चित-विषयक ग्रन्थों में—जहाँ पर कि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार और आभोग के रूप में व्रत-भंग के पाँच प्रकार बतलाये गये हैं।

कुछ वर्ष पूर्व अजमेर के बीस पंथ घड़े के शास्त्र-भंडार से जो 'जीतसार-समुच्चय' नामक ग्रंथ उपलब्ध हुआ है, उसके अन्त में 'हेमनाभ' नाम का एक प्रकरण दिया गया है। इसके भीतर भरत के प्रश्नों का ऋषभदेव के द्वारा उत्तर दिलाया गया है। वहाँ पर प्रस्तुत अतिचारों की चर्चा इस प्रकार से दी गई है—

दृग्-व्रत-गुण-शिक्षाणां पञ्च पञ्चैकशो मलाः।
अतिक्रमादिभेदेन पञ्चषष्टिश्च सन्ततेः॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन तेरह व्रतों में से प्रत्येक व्रत के अतिक्रम आदि के भेद से पाँच-पाँच मल या दोष होते हैं अतएव सर्व मलों की संख्या (१३×५=६५) पैंसठ हो जाती है।

इसके आगे सातवें आदि श्लोकों में अतिक्रम-व्यतिक्रम आदि पाँचों भेदों का स्वरूप देकर कहा गया है—

त्रयोदश-व्रतेषु स्युर्मानस-शुद्धिहानितः ।
त्रयोदशातिचारास्ते विनश्यन्त्यात्मनिन्दनात् ।।१०।।
त्रयोदश-व्रतानां स्वप्रतिपक्षाभिलाषिणाम् ।
त्रयोदशातिचारास्ते शुद्धयन्ति स्वान्तनिग्रहात् ।।११।।
त्रयोदश-व्रतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुर्वतः ।
त्रयोदशातिचाराः स्युस्तत्त्यागान्निर्मलो गृही ।।१२।।
त्रयोदश-व्रतानां तु छद्मनं भंगं वितन्वतः ।
त्रयोदशातिचाराः स्युः शुद्धचन्ते योगदण्डनात् ।।१३।।
त्रयोदश-व्रतानां तु साभोग-व्रतभंजनात् ।
त्रयोदशातिचाराः स्युश्छद्मनं शुद्धिर्यधिकान्नयात् ।।१४।।

अर्थात् उक्त तेरह व्रतों में मानस-शुद्धि की हानिरूप व्यतिक्रम से जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे अपनी निन्दा से दूर हो जाते हैं । तेरह व्रतों के स्व-प्रतिपक्षरूप विषयों की अभिलाषा से जो व्यतिक्रम-जनित तेरह अतिचार लगते हैं, वे मन के निग्रह करने से शुद्ध हो जाते हैं । तेरह व्रतों के आचरण रूप क्रिया में आलस्य करने से तेरह अतिचार लगते हैं, उनके त्याग करने से गृहस्थ निर्मल या शुद्ध हो जाता है । तेरह व्रतों के अनाचार रूप छद्म भंग को करने से जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे मन-वचन-काय रूप तीनों योगों के निग्रह से शुद्ध हो जाते हैं । तेरह व्रतों के आभोग-जनित व्रत-भंग से जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-वर्णित नय-मार्ग से शुद्ध होते हैं ।।१०—१४।।

इस विवेचन से सिद्ध है कि प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचारों में से एक-एक अतिचार अतिक्रम-जनित है, एक-एक व्यतिक्रम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एक-एक आभोग-जनित है । उक्त सन्दर्भ से दूसरी बात यह भी प्रकट होती है कि प्रत्येक अतिचार की शुद्धि का प्रकार भी भिन्न-भिन्न ही है । इससे यह निष्कर्ष निकला कि यतः व्रत-भंग के प्रकार पाँच हैं, अतः तज्जनित दोष या अतिचार भी पाँच ही हो सकते हैं ।

प्रायश्चित्तचूलिका के टीकाकार ने भी उक्त प्रकार से ही व्रत-सम्बन्धी दोषों के पाँच-पाँच भेद किये हैं । यथा-

"सर्वेऽपि व्रत-दोषाः पञ्चषष्ठिभेदा भवंति । तद्यथा-अतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचारो आभोग इति । एषामर्थश्चायमभिधीयते जरद्-गवन्यायेन । यथा-कश्चिद् जरद्-गवः महाशस्यसमृद्धि-सम्पन्नं क्षेत्रं सगवलोक्य तत्सीम-समीपप्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्पृहां संविधत्ते सोऽतिक्रमः । पुनर्विवरोदरान्तरास्यं संप्रवेश्य ग्रासमेकं समादत्तामीत्यभिलाषकालुष्यमस्य व्यतिक्रमः । पुनरपि तद्-वृत्ति-समुल्लंघनमस्यातिचार । पुनरपि क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्राममेकं समादाय पुनरस्यापसरणमनाचारः । भूयोऽपि निःशंकितः क्षेत्रमध्यं प्रविश्य यथेष्टं संभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रचण्डदण्डताडनखलीकारः आभोगकारः आभोग इति । एवं व्रतादिष्वपि योज्यम् ।

—प्रायश्चित्तचूलिका० श्लो० १४६ टीका

भावार्थ—प्रत्येक व्रत के दोष अतिक्रम आदि के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं । इन पाँचों का अर्थ एक बूढ़े बैल से दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट किया गया है । कोई बूढ़ा बैल धान्य के हरे-भरे किसी खेत को देखकर उसके समीप बैठा हुआ उसे खाने की मन में इच्छा करता है, यह अतिक्रम दोष है । पुनः वह बैठा-बैठा ही बाड़ के किसी छिद्र से भीतर मुख डालकर एक ग्रास धान्य खाने की अभिलाषा करे तो यह व्यतिक्रम दोष है । अपने स्थान से उठकर और खेत की बाड़ को तोड़कर भीतर घुसने का प्रयत्न करना अतिचार नाम का दोष है । पुनः खेत में पहुँचकर एक ग्रास घास या धान्य को खाकर वापिस लौट आवे, तो यह अनाचार नाम का दोष है । किन्तु जब वह निःशंक होकर और खेत के

भीतर घुस यथेच्छ घास खाता है और खेत के स्वामी-द्वारा डण्डों से पीटे जानेपर भी घास खाना नहीं छोड़ता तो आभोग नाम का दोष है। जिस प्रकार अतिक्रमादि दोषों को बूढ़े बैल के ऊपर घटाया गया है, उसी प्रकार से व्रतों के ऊपर भी लगा लेना चाहिए।

इस विवेचन से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि अतिक्रमादि पाँच प्रकार के दोषों को ध्यान में रखकर ही प्रत्येक व्रत के पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं।

श्रावकधर्म का वर्णन करने वाले जितने भी ग्रंथ हैं उनमें से व्रतों के अतिचारों का वर्णन उपासकदशांग-सूत्र और तत्वार्थसूत्र में ही सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होता है। तथा श्रावकाचारों में से सर्वप्रथम रत्नकरण्डश्रावकाचार में अतिचारों का वर्णन पाया जाता है। जब तत्वार्थसूत्र-वर्णित अतिचारों का उपासकदशांगसूत्र से—जो श्वेताम्बरों द्वारा सर्वमान्य है—तुलना करते हैं, तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि एक का दूसरे पर प्रभाव ही नहीं है, अपितु एक ने दूसरे के अतिचारों का अपनी भाषा में अनुवाद किया है। यदि दोनों के अतिचारों में कहीं अन्तर है तो केवल भोगोपभोग-परिमाण व्रत के अतिचारों में है। उपासकदशासूत्र में इस व्रत के अतिचार दो प्रकार से बतलाए हैं—भोगतः और कर्मतः। भोग की अपेक्षा वे ही पाँच अतिचार बतलाये गये हैं जो तत्वार्थसूत्र में दिये गये हैं। कर्म की अपेक्षा उपासकदशासूत्र में पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं जो कि खर-कर्म के नाम से प्रसिद्ध हैं और पं० आशाधरजी ने सागारधर्मामृत में जिनका उल्लेख किया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपासकदशा में कर्म की अपेक्षा जो पन्द्रह अतिचार बतलाये गये हैं, उन्हें तत्वार्थसूत्रकार ने क्यों नहीं बतलाया ? मेरी समझ से इसका कारण यह प्रतीत होता है कि तत्वार्थसूत्रकार 'व्रत-शीलेषु पंच-पंच यथाक्रमम्' इस प्रतिज्ञा से बंधे हुए थे, इसलिए उन्होंने व्रत के पाँच-पाँच ही अतिचार बताये। पर उपासकदशाकार ने इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा अतिचारों के वर्णन करने के पूर्व नहीं की है। अतः वे पाँच से अधिक भी अतिचारों के वर्णन करने के लिए स्वतंत्र रहे हैं।

तत्वार्थसूत्र और रत्नकरण्डश्रावकाचार-वर्णित अतिचारों का जब तुलनात्मक दृष्टि से मिलान करते हैं, तो कुछ व्रतों के अतिचार में एक खास भेद नजर आता है। उनमें से दो स्थल खास तौर से उल्लेखनीय हैं—एक परिग्रह-परिमाण व्रत और दूसरा भोगोपभोगपरिमाणव्रत। तत्वार्थसूत्र में परिग्रहपरिमाणव्रत के जो अतिचार बताये गये हैं, उनसे पाँच की एक निश्चित संख्या का अतिक्रमण होता है। तथा भोगोपभोगव्रत के जो अतिचार बताये गये हैं, वे केवल भोग पर ही घटित होते हैं, उपभोग पर नहीं; जबकि व्रत के नामानुसार उनका दोनों पर ही घटित होना आवश्यक है। रत्नकरण्ड के कर्त्ता स्वामी समन्तभद्र जैसे तार्किक व्यक्ति के हृदय में उक्त बात खटकी और इसीलिए उक्त दोनों ही व्रतों के एक नये ही प्रकार के पाँच-पाँच अतिचारों का निरूपण किया जो कि उपर्युक्त दोनों आपत्तियों से रहित हैं।

यहाँ पर सम्यग्दर्शन, बारह व्रत और सल्लेखना के अतिचारों का अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार और आभोग इन पाँच प्रकार के दोषों में वर्गीकरण किया जाता है—

१	२	३	४	५
व्रतनाम	अतिक्रम	व्यतिक्रम	अतिचार	अनाचार	आभोग
सम्यग्दर्शन	शंका	कांक्षा	विचिकित्सा	अन्यदृष्टिप्रशंसा	अन्यदृष्टिसंस्तव
अहिंसाणुव्रत	बन्धन	पीडन	छेदन	अतिभारारोपण	अन्न-पाननिरोध
सत्याणुव्रतप	रिवाद	रहोऽभ्याख्यान	पैशुन्य	कूटलेखकरण	न्यासापहार
अचौर्याणुव्रत	विरुद्धराज्यातिक्रम	सदृशसम्मिश्रण	हीनाधिकविनिमान	चौरप्रयोग	चौरार्थादान
ब्रह्मचर्याणुव्रत	अन्यविवाहकरण	अनंगक्रीड़ा	विटत्व	विपुलतृषा	इत्वरिकागमन
परिग्रहपरिमाणव्रत	विस्मय	अतिलोभ	अतिवाहन	अतिभारारोपण	अतिसंग्रह

दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम	अधोव्यतिक्रम	तिर्यग्व्यतिक्रम	अवधिविस्मरण	क्षेत्रवृद्धि
देशव्रत	रूपानुपात	शब्दानुपात	पुद्गलक्षेप	आनयन	प्रेष्य-प्रयोग
अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प	कौत्कुच्य	मौखर्य	असमीक्ष्याधिकरण	अतिप्रसाधन
सामायिक	मनोदु:प्रणिधान	वचोदु:प्रणिधान	कायदु:प्रणिधान	अनादर	विस्मरण
प्रोषधोपवास	अदृष्टमृष्टग्रहण	अ० मृ० विसर्ग	अ० मृ० आस्तरण	अनादर	विस्मरण
भोगोपभोग	विषय-विषतोऽनुप्रेक्षा	अनुस्मृति	अतिलौल्य	अतितृषा	अतिअनुभव
अतिथिसंविभाग	हरित-पिधान	हरित-निधान	मात्सर्य	अनादर	विस्मरण
सल्लेखना	भय	मित्रानुराग	जीविताशंसा	मरणाशंसा	निदान

उपर्युक्त वर्गीकरण रत्नकरण्ड-वर्णित अतिचारों को लक्ष्य में रखकर किया गया है; क्योंकि ये अतिचार सबसे अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होते हैं। तथा भोगोपभोग व्रत के अतिचारों में जो विसंगति ऊपर बताई गई है, वह भी रत्नकरण्ड के अतिचारों में नहीं रहती है।

सारे लेख का सार यह है कि सभी अतिचारों को एक सा न समझना चाहिए, किन्तु प्रत्येक व्रत के अतिचारों में व्रतभंग-सम्बन्धी तर-तमता है, उनके फल में और उनकी शुद्धि में भी तर-तमता-गत भेद है, भले ही उन्हें अतिचार, मल या दोष जैसे किसी भी सामान्य शब्द से कहा गया हो।

अतिचार-रहस्य

(श्री० पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री)

देव, गुरु, संघ, आत्मा आदिकी साक्षीपूर्वक जो हिंसादि पापोंका–बुरे कार्योंका–परित्याग किया जाता है, उसे व्रत कहते हैं। पापोंका यदि एक देश या आंशिक त्याग किया जाता है, तो उसे अणुव्रत कहते हैं और यदि सर्व देश त्याग किया जाता है, तो उसे महाव्रत कहते हैं। यतः पाप पांच हैं, अतः उनके त्यागरूप अणुव्रत और महाव्रत भी पांच-पांच ही होते हैं। इस व्यवस्थाके अनुसार महाव्रतोंके धारक मुनि और अणुव्रतोंके धारक श्रावक कहलाते हैं। पांचों अणुव्रत श्रावकके शेष व्रतोंके, तथा पांचों महाव्रत मुनियोंके शेष व्रतोंके मूल आधार हैं, अतएव उन्हें मूलव्रत या मूलगुणके नामसे भी कहा गया है। मूलव्रतों या मूलगुणोंकी रक्षाके लिए जो दूसरे व्रतादि धारण किये जाते हैं, उन्हें उत्तरगुण कहा जाता है। इस व्यवस्थाके अनुसार मूलमें श्रावकके पाँच मूलगुण और सात उत्तरगुण बताये गये हैं। उत्तर गुणोंका कुछ आचार्यों-ने 'शीलव्रत' संज्ञा भी दी है। श्रावक धर्मके विकासके साथ-साथ मूलगुणोंकी संख्या पाँचसे बढ़कर आठ हो गई, अर्थात् पाँचों पापोंके त्यागके साथ मद्य, मांस और मधु इन तीनोंके सेवनका त्याग करनेको आठ मूलगुण माना जाने लगा। कालान्तरमें पाँच पापोंका स्थान पांच उदुम्बर-फलोंने ले लिया और एक नये प्रकारके आठ मूल गुण माने जाने लगे। तथा पाँच अणुव्रतोंकी गणना उत्तर गुणोंमें की जाने लगी और सातके स्थान पर बारह उत्तर गुण या उत्तर व्रत श्रावकोंके माने जाने लगे।

मुनिजनोंके पाँचों पापोंका सर्वथा त्याग नव-कोटिसे अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनासे होता है, अतएव उनके व्रतोंमें किसी प्रकारके अतिचारके लिए स्थान नहीं रहता। पर श्रावकोंके प्रथम तो सर्व पापोंका सर्वथा त्याग सम्भव नहीं। दूसरे हरएक व्यक्ति नवकोटिसे पापों-का त्याग भी नहीं कर सकता है। तीसरे प्रत्येक व्यक्तिके चारों ओरका वातावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकारका रहता है। इन सब बाह्य कारणोंसे तथा संज्वलन और नो कषायोंके तीव्र उदयसे उसके व्रतोंमें कुछ न कुछ दोष लगता रहता है। अतएव व्रतकी अपेक्षा रखते हुए भी प्रमादादि तथा बाह्य परिस्थिति-जनित कारणोंसे गृहीत व्रतोंमें दोष लगनेका, व्रतके आंशिक रूपसे खण्डित होनेका और गृहीत व्रतकी मर्यादाके उल्लंघनका नाम ही शास्त्रकारोंने अतिचार रखा है। यथा—

सापेक्षस्य व्रते हि स्यादतिचारोंऽशभञ्जनम्।

(सागारधर्मामृत अ० ४ श्लोक १८)

जब अप्रत्याख्यानावरण कषायका तीव्र उदय आजाता है, तो व्रत जड़मूलसे ही खण्डित होजाता है। उसके लिए आचार्योंने अनाचार ऐसे नामका प्रयोग किया है। यदि किसी व्रतके पूरे सौ अंक रखे जावें, तो एक से लेकर निन्यानवे अङ्क तकका व्रत-खण्डन अतिचारकी सीमाके भीतर आता है। यदि शत-प्रतिशत व्रत खण्डित हो जावे, तो उसे अनाचार कहते हैं। अनेक आचार्योंने इसी दृष्टि-को लक्ष्यमें रख करके अतिचारोंकी व्याख्या की है। किन्तु कुछ आचार्योंने अतिचार और अनाचार इन दोके स्थान पर अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार ऐसे चार विभाग किये हैं। उन्होंने मनके भीतर व्रत-सम्बन्धी शुद्धिकी हानिको अतिक्रम, व्रत-की रक्षा करनेवाली शील-बाढ़के उल्लंघनको व्यति-क्रम, विषयोंमें प्रवृत्ति करनेको अतिचार और विषयसेवनमें अति आसक्तिको अनाचार कहा है।

जैसा कि आ० अमितगतिने कहा है—

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तिताम्॥

इनके मतानुसार १ से लेकर ३३ अंश तकके व्रत-भंगको अतिक्रम, ३४ से लेकर ६६ अंश तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम, ६७ से लेकर ९९ अंश तकके व्रत-भंगको अतिचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको अनाचार समझना चाहिए।

परन्तु प्रायश्चित्त-शास्त्रोंके प्रणेताओंने उक्त

चारके स्थान पर 'आभोग' को बढ़ा करके पाँच विभाग किये हैं। उनके मतसे एक बार व्रत खंडित करके भी पुनः व्रतमें वापिस आ जानेका नाम अनाचार है और व्रत-खण्डित होनेके बाद निःशंक होकर उत्कट अभिलाषाके साथ विषय-सेवन करने-का नाम आभोग है। किसी-किसी प्रायश्चित्तकारने अनाचारके स्थान पर छन्न भंग नाम दिया है।

प्रायश्चित्त-शास्त्रकारोंके मतसे १ से लेकर २५ अंश तकके व्रत-भंगको अतिक्रम, २५ से लेकर ५० अंश तकके व्रत-भंगको व्यतिक्रम, ५१ से लेकर ७५ अंश तकके व्रत भंगको अतिचार, ७६ से लेकर ९९ अंश तकके व्रत-भंगको अनाचार और शत-प्रतिशत व्रत-भंगको आभोग समझना चाहिए।

एक विचारणीय प्रश्न

श्रावकके जो बारह व्रत बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचार बतलाये गये हैं, जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र अ० ७, सू० २४ से सिद्ध है—

"व्रत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्।"

ऐसी दशामें स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रत्येक व्रतके पांच-पांच ही अतिचार क्यों बतलाये गये हैं? तत्त्वार्थसूत्रकी उपलब्ध समस्त दिगम्बर और श्वेताम्बर टीकाओंके भीतर इस प्रश्नका कोई उत्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। जिन-जिन श्रावकाचारोंमें अतिचारोंका निरूपण किया गया है, उनमें तथा उनकी टीकाओंमें भी इस प्रश्नका कोई समाधान नहीं मिलता। पर इस प्रश्न-के समाधानका संकेत मिलता है प्रायश्चित्त-विषयक ग्रन्थोंमें—जहां पर कि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अति-चार, अनाचार और आभोगके रूपमें व्रत-भंगके पांच प्रकार बतलाये गये हैं।

हालमें ही अजमेर-भण्डारसे जो 'जीतसार-समुच्चय' नामक ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है, उसके अन्त-में 'हेमनाभ' नामका एक प्रकरण दिया गया है। इसके भीतर भरतके प्रश्नोंका भ० वृषभदेवके द्वारा उत्तर दिलाया गया है। वहां पर प्रस्तुत अतिचारों-की चर्चा इस प्रकारसे दी हुई है—

दग्-व्रत-गुण-शिक्षाणां पञ्च पञ्चैकशो मलाः।
अतिक्रमादिभेदेन पञ्चषष्टिश्च सन्तताः॥६॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन तेरह व्रतोंमेंसे प्रत्येक व्रतके अतिक्रम आदिके भेदसे पांच-पांच मल या अतिचार होते हैं। अतएव सर्व अतिचार (१३×५ =६५) पैंसठ हो जाते हैं।

इसके आगे सातवें श्लोकमें अतिक्रम, व्यतिक्रम आदि पांचों भेदोंका स्वरूप आदि दिया गया है और तदनन्तर कहा गया है कि—

त्रयोदश-व्रतेषु स्युर्मानस-शुद्धिहानितः।
त्रयोदशातिचारास्ते विनश्यन्त्यात्मनिन्दनात् ॥१०॥
त्रयोदश-व्रतानां स्वप्रतिपक्षाभिलाषिणाम्।
त्रयोदशातिचारास्ते शुद्धयन्ति स्वान्तनिग्रहात् ॥११॥
त्रयोदश-व्रतानां तु क्रियाऽऽलस्यं प्रकुर्वतः।
त्रयोदशातिचाराः स्युस्तत्यागान्निर्मलो गृही ॥१२॥
त्रयोदश-व्रतानां तु छन्न भंगं वितन्वतः।
त्रयोदशातिचाराः स्युः शुद्धयन्ते योगदण्डनात् ॥१३॥
त्रयोदशव्रतानां तु साभोग-व्रतभंजनात्।
त्रयोदशातिचाराः स्युरछन्नं शुद्धयधिकात्रयात् ॥१४॥

अर्थात् उक्त तेरह व्रतोंमें मानस-शुद्धिकी हानि-रूप व्यतिक्रमसे जो तेरह अतिचार लगते हैं, वे अपनी निन्दा करनेसे दूर हो जाते हैं। तेरह व्रतों-के स्व-प्रतिपक्षरूप विषयोंकी अभिलाषासे जो व्यति-क्रम-जनित तेरह अतिचार लगते हैं, वे मनके निग्रह करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह व्रतोंके आच-रणरूप क्रियामें आलस्य करनेसे जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, उनके त्यागसे गृहस्थ निर्मल अर्थात् अतिचार-जनित दोषसे शुद्ध हो जाता है। तेरह व्रतोंके अनाचाररूप छन्न भंगको करनेसे जो तेरह अतिचार होते हैं, वे मन, वचन, कायरूप तीनों योगोंके निग्रहसे शुद्ध हो जाते हैं। तेरह व्रतोंके आभोग-जनित व्रत-भंगसे जो तेरह अतिचार उत्पन्न होते हैं, वे प्रायश्चित्त-वर्णित नय-मार्गसे शुद्ध होते हैं ॥१०-१४॥

इस विवेचनसे सिद्ध है कि प्रत्येक व्रतके पांच पांच अतिचारोंमेंसे एक-एक अतिचार अतिक्रम-जनित है, एक-एक व्यतिक्रम-जनित है, एक-एक अतिचार-जनित है, एक-एक अनाचार-जनित है और एक-एक आभोग-जनित है। उक्त सन्दर्भसे

दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि प्रत्येक अति-चारकी शुद्धिका प्रकार भी भिन्न-भिन्न है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि यतः व्रत-भंगके प्रकार पांच हैं, अतः तज्जनित दोष या अतिचार भी पांच ही हो सकते हैं।

प्रायश्चित्तचूलिकाके टीकाकारने भी उक्त प्रकारसे ही व्रत-सम्बन्धी दोषोंके पांच-पांच भेद किये हैं—

सर्वोऽपि व्रतदोषः पञ्चपष्ठिभेदो भवति। तद्यथा–अतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचारोऽभोग इति। एषामर्थश्चायमभिधीयते जरद्गवन्यायेन। यथा—

कश्चिज्जरद्गवः महासस्यसमृद्धि-सम्पन्नं क्षेत्रं समवलोक्य तत्सीमसमीपप्रदेशे समवस्थितस्तत्प्रति स्पृहां संविधत्ते सोऽतिक्रमः। पुनर्विवरोदरान्तरास्यं संप्रवेश्य ग्रासमेकं समाददामीत्यभिलापकालुष्यमस्य व्यतिक्रमः। पुनरपि तद्-वृत्तिसमुल्लंघनमस्याति-चारः। पुनरपि क्षेत्रमध्यमधिगम्य ग्रासमेकं समा-दाय पुनरस्यापसरणमनाचारः। भूयोऽपि निःशं-कितः क्षेत्रमध्यं प्रविश्य यथेष्टं संभक्षणं क्षेत्रप्रभुणा प्रचण्डदण्डताडनखलीकारः आभोगकारः आभोग इति। एवं व्रतादिष्वपि योज्यम्।

(प्रायश्चित्त-चूलिका. श्लो० १४६ टीका)

भावार्थ—प्रत्येक व्रतके दोष अतिक्रम, व्यति-क्रम, अतिचार, अनाचार और आभोगके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। इन पांचोंका अर्थ एक बूढ़े बैलके दृष्टान्त-द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

जैसे कोई बूढ़ा बैल धान्यसे हरे-भरे किसी खेतको देखकर उसके समीप बैठा हुआ ही उसके खानेकी मनमें इच्छा करे, यह अतिक्रम दोष है। पुनः बैठा बैठा ही बाढ़के किसी छिद्रसे भीतरको मुँह डालकर एक ग्रास लेनेकी अभिलाषा करे, यह व्यतिक्रम दोष है। पुनः उठकर और खेतकी बाढ़को तोड़कर भीतर घुसनेका प्रयत्न करना अतिचार नामका दोष है। पुनः खेतमें पहुँचकर एक ग्रास घासको खाकर वापिस लौटना, यह अनाचार नाम-का दोष है। फिर भी निःशंकित होकर खेतके भीतर घुसकर यथेच्छ घास खाना और खेतके मालिकद्वारा डंडोंसे प्रबल आघात किये जाने पर भी घासका खाना न छोड़ना आभोग नामका दोष है। जिस प्रकार अतिक्रमादिको बूढ़े बैलके ऊपर घटाया गया है, इसी प्रकार व्रतोंके ऊपर भी लगा लेना चाहिए।

इस विवेचनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि अतिक्रमादि पाँच प्रकारके दोषोंकी अपेक्षा ही प्रत्येक व्रतके पाँच-पाँच अतिचार बत-लाये गये हैं।

श्रावक-धर्मका प्रतिपादन करनेवाले जितने भी ग्रन्थ हैं, उनमेंसे व्रतोंके अतिचारोंका वर्णन उपा-सकाध्ययन और तत्त्वार्थसूत्रमें ही सर्वप्रथम दृष्टि-गोचर होता है। तथा श्रावकाचारोंमेंसे सर्वप्रथम रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें अतिचारोंका वर्णन किया गया है। जब हम तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित अतिचारोंका उपासकाध्ययन सूत्रसे जोकि आज एकमात्र श्वेता-म्बरोंके द्वारा ही मान्य हो रहा है—तुलना करते हैं, तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि एक-का दूसरे पर प्रभाव ही नहीं है, अपितु एकने दूसरे-के अतिचारोंका अपनी भाषामें अनुवाद किया है। यदि दोनोंके अतिचारोंमें कहीं अन्तर है, तो केवल भोगोपभोग-परिमाणव्रतके अतिचारोंमें है। उपास-काध्ययन-सूत्रमें इस व्रतके अतिचार दो प्रकारसे बतलाये हैं—भोगतः और कर्मतः। भोगकी अपेक्षा वे ही पाँच अतिचार बतलाये गये हैं, जोकि तत्त्वार्थ-सूत्रमें दिये गये हैं। कर्मकी अपेक्षा उपासकाध्ययन-में पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं, जोकि खरकर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं, और सागारधर्मामृतके भीतर जिनका उल्लेख किया गया है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपासका-ध्ययनमें कर्मकी अपेक्षा जो पन्द्रह अतिचार बतलाये गये हैं, उन्हें तत्त्वार्थसूत्र-कारने क्यों नहीं बतलाया? मेरी समझसे इसका कारण यह प्रतीत होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार "व्रत-शीलेषु पंच पंच यथाक्रमम्" इस प्रतिज्ञासे बंधे हुए थे, इसलिए उन्होंने प्रत्येक व्रतके पांच-पांच ही अतिचार बताये। पर उपास-काध्ययन-कारने इस प्रकारकी कोई प्रतिज्ञा अति-चारोंके वर्णनके पूर्व नहीं की है, अतः वे पांचसे अधिक भी अतिचारोंके वर्णन करनेके लिए स्वतंत्र रहे हैं।

तत्त्वार्थसूत्र और रत्नकरण्डश्रावकाचार-वर्णित अतिचारोंका जब तुलनात्मक दृष्टिसे मिलान करते हैं तो कुछ व्रतोंके अतिचारोंमें एक खास भेद नजर आता है। उनमेंसे दो स्थल खास तौरसे उल्लेखनीय हैं—एक परिग्रहपरिमाणव्रत और दूसरा भोगोप-भोगपरिमाणव्रत। तत्त्वार्थसूत्रमें परिग्रहपरिमाण-व्रतके जो अतिचार बताये गये हैं, उनसे पाँचकी एक निश्चित संख्याका अतिक्रमण हो जाता है। तथा भोगोपभोगव्रतके जो अतिचार बताये गये हैं, वे केवल भोग पर ही घटित होते हैं, उपभोग पर नहीं; जब कि व्रतके नामानुसार उनका दोनों पर घटित होना आवश्यक है। रत्नकरण्डके कर्त्ता आ० समन्तभद्र जैसे तार्किक व्यक्तिके हृदयमें उक्त बात खटकी और इसीलिए उन्होंने उक्त दोनों ही व्रतोंके एक नये प्रकारके ही पांच-पांच अतिचारोंका निरू-पण किया, जोकि उपर्युक्त दोनों आपत्तियोंसे रहित हैं।

यहाँ पर सम्यग्दर्शन, बारह व्रत और सल्ले-खनाके अतिचारोंका अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार और आभोग इन पांच प्रकारके दोषोंमें वर्गीकरण किया जाता है, जिसकी तालिका इस प्रकार है —

	१	२	३	४	५
अतिचार-क्रम	अतिक्रम	व्यतिक्रम	अतिचार	अनाचार	आभोग
सम्यग्दर्शन	शंका	कांक्षा	विचिकित्सा	अन्यदृष्टिप्रशंसा	अन्यदृष्टिसंस्तव
१. अहिंसाव्रत	छेदन	बन्धन	पीडन	अतिभारारोपण	आहार-वारण
२. सत्याणुव्रत–	परिवाद	रहोऽभ्याख्यान	पैशुन्य	कूटलेखकरण	न्यासापहार
३. अचौर्याणुव्रत	चौरप्रयोग	चौरार्थादान	विलोप	सदृशसन्मिश्र	हीनाधिकविनि०
४. ब्रह्मचर्याणुव्रत	अन्यविवाहकरण	अनंगक्रीड़ा	विटत्व	विपुलतृषा	इत्वरिकागमन
५. परिग्रहपरि०	अतिवाहन	अतिसंग्रह	विस्मय	अतिलोभ	अतिभार-वहन
६. दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम	अधोव्यतिक्रम	तिर्यग्व्यतिक्रम	क्षेत्रवृद्धि	अवधिविस्मरण
७. देशव्रत	रूपानुपात	शब्दानुपात	पुद्गलक्षेप	आनयन	प्रेष्यप्रयोग
८. अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प	कौत्कुच्य	मौखर्य	असमीक्ष्याधिक०	अतिप्रसाधन
९. सामायिक	मनोदुःप्रणिधान	वचोदुःप्रणिधान	कायदुःप्रणिधान	अनादर	अस्मरण
१०. प्रोषधोपवास	अदृष्टमृष्टग्रहण	विसर्ग	आस्तरण	अनादर	अस्मरण
११. भोगोपभोग-परिमाण	विषयविषतोऽनुपेक्षा	अनुस्मृति	अतिलौल्य	अतितृषा	अति-अनुभव
१२. अतिथिसंवि०	हरितविधान	हरित-निधान	मात्सर्य	अनादर	अस्मरण
सल्लेखना	जीविताशंसा	मरणाशंसा	भय	मित्रानुराग	निदान

उक्त वर्गीकरण रत्नकरण्ड-वर्णित अतिचारोंको सामने रखकर किया गया है, क्योंकि वे अतिचार मुझे सबसे अधिक युक्तिसंगत प्रतीत हुए हैं।

अन्तमें पाठकोंसे और खास तौर पर विद्वानोंसे यह नम्र निवेदन कर देना आवश्यक समझता हूँ कि वे मेरे द्वारा किये गये वर्गीकरणको अन्तिम रूपसे निश्चित किया हुआ न मान लेवें। किन्तु इस वर्गी-करण पर खूब विचार करें और जिन्हें जो भी नये विचार उत्पन्न हो, वे उसे अनेकान्तमें प्रकाशनार्थ भेजें, या व्यक्तिगत रूपसे मुझे लिखें। उनके विचारों और सुझाओंका सादर स्वागत किया जायगा।